वीरेन्द्र कुमार गुप्त

तुलसीदास

जन सो मोहि पाव

छल छिद्र न भावा

वीरेन्द्र कुमार गुप्त

गोस्वामी तुलसीदास

संस्करण : 1985 © प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली 110006 द्वारा प्रकाशित
GOSWAMI TULSIDAS (Biography), by Virendra Kumar Gupta

मूल्य : चार रुपये (4.00)

बालक रामबोला

आज से लगभग चार सौ साल पहले की बात है। सोरों नामक तीर्थ में बाबा नरहरिदास का एक बहुत बड़ा आश्रम था। वहीं रहकर वे लोगों को राम की कथा सुनाया करते थे और राम की भक्ति का उपदेश दिया करते थे। दूर-दूर से लोग बाबाजी के चरणों में राम की कथा सुनने पहुंचा करते थे। बाबाजी के कितने ही चेले थे जो आश्रम का काम संभालते थे और बाबाजी के चरणों में बैठकर शास्त्रों का अध्ययन करते थे। वे ही लगातार आते रहनेवाले भक्तों की सुख-सुविधा का भी ध्यान रखते थे।

एक दिन बाबा नरहरिदासजी राम की कथा कह रहे थे। भक्तों की भीड़ उनके अमृत वचनों को मन लगाकर सुन रही थी और झूम रही थी। इस भीड़ में सबसे आगे बाबाजी के ठीक सामने एक पति-पत्नी बैठे थे। उनकी गोद में एक पांच वर्ष का सुन्दर बालक बैठा हुआ बाबा जी के मुख को बड़े ही ध्यान से देख रहा था। पता नहीं बाबा के मुख से निकले वचनों को वह कितना समझ पा रहा था, पर लग ऐसा रहा था कि जैसे वह उन वचनों के रस में सराबोर हो उठा हो। शायद बाबा की अधपकी दाढ़ी, ध्यान में डूबी उनकी अधखुली आंखें और उनका तेज-मय चेहरा उसे अपनी ओर खींच रहा था। शायद बाबा के स्वर में ऐसा जादू था कि अधिक कुछ न समझ पाते हुए भी वह बालक चकित होकर सुन रहा था। कथा सुनाते-सुनाते जब एक स्थान पर बाबा नरहरिदास रुके और ध्यान में

डूबी उनकी भाव-विभोर अधखुली आंखें पूरी खुलीं, तो उनका ध्यान उस बालक की ओर गया। बालक के सुन्दर मुंह और उसके भाव को देखकर बाबा ने उससे बातचीत शुरू कर दी, "क्यों बेटा, कथा अच्छी लगी ?"

बालक ने बहुत भोले भाव से 'हां' में सिर हिला दिया।

उसके माता-पिता गद्गद हो उठे। उन्होंने आगे बढ़कर स्वामीजी के चरणों को छुआ। उनके कहने पर बालक ने भी अपने नन्हे हाथों से बाबा के चरण छुए। बाबा ने उसके सिर पर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद दिया।

यह बालक था, रामबोला, जो बड़ा होकर राम का महान भक्त और 'रामचरितमानस' का रचयिता महात्मा तुलसीदास बना।

रामबोला के पिता का नाम आत्माराम दूबे था और मां का नाम था, हुलसी। दोनों ही राम के भक्त थे और बाबा नरहरि-दास के लिए उनके मन में बड़ी श्रद्धा थी। वे यमुना पार तट पर बसे तारी नामक गांव में रहते थे। आत्माराम गरीब थे, पर थे विद्वान। वे आत्मसम्मान के साथ अपनी छोटी-सी गृहस्थी को चला रहे थे। उनकी पत्नी हुलसी तारी तारी से पांच-छः मील दूर राजापुर गांव के एक धनी ब्राह्मण की बेटी थी। पर हुलसी अपने पति की गरीबी में भी सुखी और सन्तुष्ट थी। फिर रामबोला जैसा सुन्दर बेटा उसे मिला था। दोनों पति-पत्नी, जब भी अवसर मिलता था, सोरों जाते थे और बाबाजी के दर्शनों से अपने को पवित्र करते थे। इस बार वे बालक रामबोला के पांच वर्ष पूरे होने के शुभ अवसर पर सोरों आए थे और बाबाजी के आश्रम में ही एक कोठरी में टिक गए थे।

आरती आदि के बाद हुलसी और आत्माराम रामबोला के साथ अपनी कोठरी में लौट आए। हुलसी ने चपातियां सेकनी

आरम्भ कीं और पिता-पुत्र बैठकर खाना तैयार होने का इन्तज़ार करने लगे। खाना खाकर तीनों सोरों के बाज़ार में गए। वहां बालक के लिए कुछ खरीदना था और उसे घुमाना भी था। लौटकर तीनों फिर कीर्तन और पूजा-पाठ में शामिल हो गए। निपटकर तीनों सो गए।

रात को पता नहीं क्या हुआ कि हुलसी और आत्माराम को बहुत तेज़ बुखार चढ़ आया। वे पीड़ा से बुरी तरह तड़पने लगे। बालक रामबोला थककर गहरी नींद सो रहा था। उन दोनों की कराह सुनकर बाबा के चेले आए। उन्होंने उनकी देख-भाल की। उनकी हालत खराब देखकर बाबा नरहरिदास भी कोठरी में पधारे। काफी इलाज किया गया, पर सुबह होते-होते दोनों ही स्वर्ग सिधार गए। आश्रम में ठहरे सभी लोग वहां इकट्ठे हो गए।

बालक रामबोला की आंखें खुलीं। माता-पिता को बिना हिले-जुले पड़े देख और भीड़ को इकट्ठा पाकर वह घबरा उठा और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। बाबा ने रामबोला को एक चेले के हाथ सौंपा और उन ब्राह्मण पति-पत्नी की दाह-क्रिया का इंतज़ाम कराया।

रामबोला खूब रोया, पर किसी तरह उसे बहलाया गया। अब वह बेसहारा हो गया था। उसका अन्दर का मन भी समझ गया था कि बाबा नरहरिदास के सिवाय अब उसका कोई नहीं है। वह बाबा के चरणों में ही रहने लगा।

बाबा को उस अनाथ बालक पर दया आई, उनके हृदय में ममता उमड़ उठी। उन्होंने तय किया कि वे इस बालक को पालेंगे और पढ़ाएंगे-लिखाएंगे। उन्हें इस बालक के प्रति एक मोह-सा पैदा हो गया था। रामबोला वहीं बाबा के पास रहने लगा। वहीं उसने पहला अक्षर-ज्ञान किया और धीरे-धीरे

शरीर से बड़ा होने के साथ-साथ विद्या सीखने में भी आगे बढ़ने लगा। बाबा नरहरिदास ने अपने नए चेले का नया नाम रखा—तुलसीदास।

जब तुलसीदास किशोरावस्था तक पहुंचे तो बाबा जी ने ऊंची पढ़ाई के लिए उन्हें काशी भेज दिया। काशी में रहकर तुलसीदास ने वेदों और शास्त्रों की अच्छी तरह पढ़ाई की। संस्कृत भाषा और व्याकरण का भी उन्होंने अच्छा ज्ञान हासिल किया। सोरों में रहते-रहते ही वे अवधी भाषा में कुछ कविता करने लगे थे। काशी में उन्होंने अपने इस रियाज़ को बढ़ाया। राम की भक्ति के कितने ही पद उन्होंने रचे। जिनको सुननेवालों ने बहुत पसन्द किया। तभी उनके मन में यह बात उठी कि क्यों न राम की कथा को जनता की भाषा में लिखा जाए। पर उस समय यह विचार, विचार ही बनकर रह गया। राम की कथा उस समय तक संस्कृत में ही लिखी जाती थी। उसका जन-भाषा में लिखा जाना पाप माना जाता था।

तुलसीदास और रत्नावली

काशी में कितने ही वर्ष रहकर और विद्या हासिल करके तुलसी अपने गुरु के पास सोरों लौट आए। वे उनके पास रहकर गुरु की सेवा में व्यस्त रहने लगे। यहीं पास के ही एक गांव के दीनबन्धु पाठक ने तुलसीदास को देखा। तुलसीदास उस समय इक्कीस-बाईस वर्ष के बहुत सुन्दर युवक थे। उनका रंग गोरा था। बदन गठा हुआ था। माथा ऊंचा था और मुंह पर तेज था। पाठकजी ने देखते ही उन्हें पसन्द कर लिया। उन्होंने तुलसीदास

की रची हुई कविताएं भी सुनीं और जान लिया कि युवक होन-हार है और मन में तय किया कि अपनी बेटी रत्नावली का विवाह इसी से करेंगे।

पर यह युवक कौन है? इसके माता-पिता कौन हैं? और विवाह की बात किससे की जाए? पाठकजी सीधे बाबा नरहरि-दास के पास पहुंचे और उन्होंने अपने मन की बात उनसे कही।

बाबा बोले, "मैं भी चाहता हूं कि तुलसी को कोई योग्य कन्या मिल जाए और वह गृहस्थ बने। मैंने तुम्हारी कन्या देखी है। उसकी-इसकी बहुत अच्छी जोड़ी रहेगी। पर विवाह की बातचीत तुम्हें तुलसी के मामा से करनी होगी।"

"वे कहां रहते हैं महाराज?" पाठकजी ने पूछा।

"वे राजापुर गांव में रहते हैं। उन्होंने तो तुलसी को कभी पूछा नहीं। मैंने ही इसे पाला-पोसा है। पर मैं संन्यासी हूं और ब्याह से मेरा कोई मतलब नहीं है। तुम राजापुर जाओ और बात पक्की कर आओ।"

दीनबन्धु पाठक राजापुर गए और तुलसीदास के मामा से मिले। मामा लोग अपने भानजे को भूल चुके थे। दीनबन्धु के मुख से सब कुछ सुनकर उन्हें बड़ा पछतावा हुआ। उन्होंने तुरन्त विवाह की मंजूरी दे दी और इस शुभ काम का पूरा ज़िम्मा अपने ऊपर ले लिया। दीनबन्धु पाठक के साथ वे सोरों पहुंचे। बाबा नरहरिदास के चरणों में सिर रखकर उन्होंने क्षमा मांगी। युवक तुलसीदास को बुलाकर उन्होंने अपने गले से लगाया और बाबाजी की आज्ञा से उसे राजापुर लिवा लाए।

वहां उन्होंने तुलसीदास को एक छोटा-सा घर अलग बनवा दिया। गृहस्थी का सब सामान उसमें जुटा दिया और तब ब्याह की तैयारियां शुरू कीं। ब्याह का शुभ दिन आया, ब्याह हुआ। वर-वधू ने सबसे पहले सोरों जाकर गुरु नरहरिदास का

आशीर्वाद लिया और तब वे राजापुर में अपने नए घर में आ पहुंचे।

रत्नावली बहुत ही सुन्दर बहू थी। तुलसीदास के मामाओं ने उसे काफी गहने चढ़ाए थे। जब रत्नावली गहनों से लदी, झमक-झमक करती उस छोटे-से घर में घूमती थी, तो युवक तुलसीदास का हृदय खुशी से भर उठता था। वे अपनी पत्नी को बहुत ही प्यार करने लगे थे और एक पल के लिए भी उसे अपनी आंखों से दूर करना उन्हें सहन नहीं होता था। मामाओं ने गुज़ारे के लिए छोटा-मोटा काम तुलसीदास को दिला दिया था। वे जैसे-तैसे उसे पूरा करते और सीधे घर पहुंच जाते। वहां वे रत्नावली को काम करते देखते, उससे बातें करते, उसके साथ भोजन करते और तरह-तरह की बातों में अपना समय बिताते। जब रत्नावली को पति के पास रहते बहुत दिन बीत गए, तब एक दिन रत्नावली का बड़ा भाई उसे लिवाने आ पहुचा।

तुलसीदास के सिर पर जैसे दुख का पहाड़ टूट पड़ा हो। उनका मन छोटा हो गया। उन्होंने रत्नावली के भाई की अच्छी आव-भगत की। पर जब उसने अपनी बहन को ले जाने की बात छेड़ी तो तुलसीदास ने साफ इन्कार कर दिया।

अब रत्नावली का भाई तुलसीदास के मामाओं के पास पहुंचा। मामाओं ने भी तुलसीदास को बहुत ऊंच-नीच समझाई। पर तुलसी आश्रम में पले थे, गृहस्थियों की ऊंच-नीच को वे नहीं समझते थे। मामाओं के सामने तो वे न बोले, पर अलग में अपने साले से उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि रत्नावली को किसी भी दशा में वे नहीं भेजेंगे। हारकर पत्नी का भाई लौट गया। तुलसीदास की जान में जान आई। वे फिर पहले की तरह हंसी-खुशी से रहने लगे।

कुछ दिन बाद की बात है। वे अपने काम से घर लौटे तो

रत्नावली को उन्होंने घर में नहीं पाया। पड़ोसियों से पूछने पर पता चला कि रत्नावली का भाई आया था और वह उसे लिवा ले गया है। यह सुनते ही तुलसीदास को ऐसा लगा जैसे उनका खज़ाना लुट गया हो या उनके प्राण ही उड़ गए हों। रत्नावली से खाली उस घर में वे घुस नहीं सके और जैसे खड़े थे वैसे ही ससुराल के गांव की ओर चल पड़े। जिस समय वे चले उस समय शाम होने को थी। रास्ते में यमुना नदी पड़ती थी और बीस-पच्चीस कोस चलना भी था। पर तुलसीदास ने इन सब बातों का कोई विचार नहीं किया। वे इतने बेचैन हो उठे कि भूख-प्यास को भी भूल गए। सवारी का प्रवन्ध भी नहीं किया और लपक लिए।

वे चल नहीं रहे थे। लगभग भागे जा रहे थे। वे शायद कुछ भी सोच नहीं रहे थे। उनके दिमाग में बस एक रत्नावली का चित्र था और यह दुख था कि वह उनसे बिना पूछे कैसे चली गई। पर वे रत्नावली को दोष नहीं दे पा रहे थे। वे सोच रहे थे कि ज़रूर ही रत्नावलो जाना नहीं चाहती होगी। उसका भाई ही उसे ज़बरदस्ती लिवा ले गया है।

जब तुलसीदास यमुना के तट पर पहुंचे तब रात हो चुकी थी। पार कराने वाली आखिरी नाव किनारे को छोड़कर जा चुकी थी। बरसात का मौसम होने के कारण नदी चढ़ी हुई थी। नदी का पाट इतना चौड़ा हो गया था कि दूसरा छोर दीख नहीं पड़ता था। जल बड़ी ही तेज़ गति से बहा जा रहा था। मोटी-मोटी लहरें उठ रही थीं। पर तुलसीदास के सिर पर कुछ ऐसा भूत सवार था और रत्नावली से मिलने की ऐसी छटपटाहट उनमें थी कि उस समय वे सोचने और हानि-लाभ को गिनने की स्थिति में नहीं थे। उन्होंने आव देखा न ताव जूते निकालकर कमरबन्द में खोंसे और नदी में कूद पड़े।

वे तैरते जा रहे थे, तैरते जा रहे थे। पर पानी का बहाव

इतना तेज़ था कि पूरे हाथ-पैर मारकर भी कुछ ही दूर आगे बढ़ पा रहे थे। तैरते-तैरते जब वे नदी के बीच पहुंचे तो बहुत ही थक गए। यहां पानी बहुत गहरा था। पैर टिकाने का तो सवाल ही नहीं था। धार इतनी तेज़ थी कि वे शरीर को ढीला छोड़ नहीं सकते थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए। किनारा अभी काफी दूर था।

तभी उन्होंने देखा कि एक लम्बी-सी चीज़ दूर से बहती चली आ रही है। उन्होंने सोचा, यह एक लम्बा तख्ता है, जिसका सहारा लिया जा सकता है। उसे थामने के लिए वे उसकी तरफ को सरके। जैसे ही लम्बी-सी चीज़ पास आई, तुलसीदास ने उस पर हाथ रखा, पर हाथ से छूते ही उन्होंने हाथ खींच लिया। यह लम्बी चीज़ तख्ता नहीं किसी व्यक्ति की लाश थी। हाथ हटते ही लाश आगे को सरकी। तभी तुलसीदास के दिमाग में विचार कौंधा कि यदि रत्नावली को पाना है तो यमुना को पार करना ही होगा। और यमुना को पार करना है तो इस लाश का सहारा लेना ही होगा। नहीं लिया तो मैं भी इस लाश की तरह ही लहरों के साथ बह जाऊंगा और रत्नावली फिर कभी नहीं मिल सकेगी। दूसरे ही पल हाथ फेंककर उन्होंने उस बहती लाश को पकड़ लिया और उसके ऊपर अपने-आपको टिकाकर धीमे-धीमे नदी पार करने लगे। नदी पार हो गई। लाश को उन्होंने छोड़ दिया। वह आगे बह गई और वे तट पर बैठकर सुस्ताने लगे।

कुछ देर सुस्ताकर तुलसीदास फिर आगे बढ़े। रात बढ़ती जा रही थी और उनकी ससुराल का गांव नज़दीक आता जा रहा था। जब उन्होंने गांव में पैर रखा, तब लगभग आधी रात बीत रही थी।

वे ससुराल के द्वार पर पहुंचे। उन्होंने द्वार को थपथपाया। शायद दीनबन्धु पाठक अभी जाग ही रहे थे। आवाज़ सुनकर

उन्होंने दरवाज़ा खोल दिया। देखते ही पाठकजी सन्न रह गए। उनका जमाई बदहवास और बुरी हालत में सामने खड़ा था। तुलसीदास ने प्रणाम किया और बिना किसी संकोच के पूछा, "क्या रत्नावली यहां आई है ?"

"हां !" दीनबन्धु बोले, "आप अन्दर चलिए।"

दीनबन्धु तुलसीदास को अन्दर लिवा ले गए। पलभर में सारा घर जाग उठा। रत्नावली के आने की खुशी में सब लोग बहुत देर से तो सोए ही थे। घर में एक हलचल मच गई। बहनें और अन्य स्त्रियां रत्नावली को घेरकर प्यार से खिजाने लगीं। तुलसीदास के कपड़े बदलवाए गए। सास उनके लिए गरम-गरम दूध और मिठाई ले आई। वे खाते जाते थे और सबके चेहरे को देखते जाते थे। सबके मुंह पर दुत्कार का भाव था। सब मानो उसका मजाक उड़ा रहे थे। सहसा एक पछतावे का भाव उनमें पैदा हुआ। पर रत्नावली को देखने की ललक उनमें इतने ज़ोर की थी कि वे आगे-पीछे कुछ सोच नहीं सके। सास उनके मन के भाव को समझ रही थी। खिलाने-पिलाने के बाद उसने उन्हें रत्नावली से मिलने जाने दिया।

जब तुलसीदास रत्नावली के कमरे में पहुंचे तो वह गुस्से से तनी बैठी थी। उसका मुंह लाल हो रहा था। बहनों और भाभियों ने उसे बहुत चिढ़ाया था और वह अपने पति पर बहुत खीजी हुई थी। तुलसीदास को देखते ही उसने कहा :

"लाज न लागत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक्-धिक् ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि-चर्म-मय देह मम, तामें ऐसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महं, होति न तौ भव-भीति॥"

आपको शर्म नहीं आई, जो पीछे-पीछे दौड़े चले आए। ऐसा भी क्या प्रेम हो गया। मेरे इस हाड़-मांस के शरीर से आपको

जितना प्रेम है, इतना प्रेम यदि राम के चरणों से होता तो मोक्ष न मिल जाता।

पत्नी का एक-एक शब्द तुलसीदास के कानों में पड़ रहा था और अंदर गहरे में उतरता चला जा रहा था। जो पछतावे का भाव अभी-अभी हलका-सा उठकर दबा रह गया था, वह फुफकारकर उन पर छा गया। उन्हें अपनी सारी भाग-दौड़ इतनी बेकार लगी कि वे शर्म से पानी-पानी हो गए। उनकी आंखों के सामने से अज्ञान का पर्दा हट गया। रात के उस अंधेरे में भी अपने जीवन का रास्ता उन्हें साफ-साफ दीख उठा। उनका सारा शरीर कांपकर और झनझनाकर रह गया। रत्नावली दबे-दबे सिसकियां ले रही थी और वे मानो उड़कर किसी और लोक में पहुंच गए थे। अचानक उनकी आंखों के सामने गहनों से लदी परम सुन्दरी रत्नावली प्रकट हुई और तभी वह सोने की शक्ल हड्डियों के एक भयानक ढांचे में बदल गई। पता नहीं कितनी देर तुलसीदास इस तरह खोए बैठे रहे और रत्नावली सिसकती रहीं। तब उनके मन में एक निश्चय जगा और वे पलंग से उठ खड़े हुए। रत्नावली ने सिर उठाकर देखा तो वे दरवाज़े तक जा चुके थे।

"कहां जा रहे हो ?" रत्नावली ने पूछा।

"उसी राम के चरणों में जिससे प्रेम करने का उपदेश अभी-अभी तुमने मुझे दिया।" तुलसीदास बोले।

रत्नावली ने समझा कि पति सिर्फ मान कर रहे हैं। वे बुरा मान गए हैं। उसने आगे बढ़कर उनका हाथ पकड़ लिया और कहा, "मैं नहीं जाने दूंगी।"

"अब तुम मुझे नहीं रोक सकोगी। मेरी गृहस्थी आज पूरी

रत्नावली के पीछे-पीछे आने पर
तुलसीदास को उससे फटकार मिली

हुई।" कहकर तुलसीदास ने कमरे का द्वार खोला और बाहर निकल आए। घर के लोग अपने-अपने बिस्तरों पर लेट चुके थे। तुलसीदास दबे पांव मुख्य दरवाज़े की तरफ बढ़े और उसे खोल-कर बाहर निकल गए।

रत्नावली कुछ देर तो खड़ी सोचती रही। फिर वह भी खाट पर लेट गई। उसने सोचा कि पति नाराज़ भी कब तक रहेंगे। कल-परसों में आकर खुद ही मुझे लिवा ले जाएंगे।

साधु-जीवन और राम-कथा की खोज

रत्नावली का विचार सही नहीं था। तुलसीदास के मन में एक ऐसी आग जल चुकी थी जो बुझ नहीं सकती थी। वे मानो नशे में थे और उनके मुंह से निरन्तर 'हरि-प्रेम' 'प्रभु-प्रेम' आदि स्वर निकल रहे थे। उनके मन में बैराग जाग गया था। उनके हृदय से पत्नी का मोह जा चुका था। लगता था मानो युवक प्रेमी तुलसीदास मर चुका था और एक नया बैरागी तुलसीदास जन्म ले चुका था। वे लगातार बढ़े जा रहे थे। पत्नी का गांव पीछे छूट गया था और सामने उजाड़ झाड़-झंखाड़ और पेड़ थे। आधी रात से काफी अधिक समय हो चुका था। ठंडी हवा सांय-सांय कर रही थी और उस हवा पर तुलसीदास के मुंह से निरन्तर निकलते शब्द तैर रहे थे—'राम-राम', 'हरे-हरे।'

तुलसीदास न जानते हुए भी सोरों, अपने गुरु के आश्रम की ओर बढ़े जा रहे थे। दिन निकलते-निकलते वे सोरों पहुंच गए और सीधे जाकर बाबा नरहरिदास के चरणों में गिर पड़े। बाबा ने उनकी वह दशा देखी। उन्होंने तुलसीदास को उठाया, पास

बैठाया और सब बातें पूछीं। तुलसीदास ने शान्त होने पर सब कुछ बताया और उनसे प्रार्थना की कि उन्हें तुरन्त दीक्षा दे दी जाए। बाबा सोच में पड़ गए। अभी विवाह को दिन ही कितने हुए हैं। उन्होंने कुछ दिन इन्तज़ार करना तय किया।

पर तुलसीदास की जो दशा थी उसे देखकर बाबा समझ गए कि अब यह युवक वापस घर नहीं जाएगा। उन्होंने तुलसीदास को अन्तिम बार समझाने की कोशिश की। तुलसी अपने हठ पर अड़ गए। तब एक दिन शुभ मुहूर्त में उन्होंने अपने प्रिय शिष्य तुलसीदास को दीक्षा दे दी। तुलसीदास ने सदा के लिए गृहस्थों का पहनावा त्याग दिया और भगवे कपड़े पहन लिए।

अब तुलसीदास ने बाबा से प्रार्थना की, 'राम की रहस्यमयी कथा मुझे सुनाइए।" उनका कहना था कि आज तक मेरा हृदय इस पवित्र कथा को सुनने के लिए और इसके मर्म को ग्रहण करने के लिए अन्दर से तैयार नहीं था। दुनिया के लोभ, मोह और लगाव उसे जकड़े हुए थे। मैं आज तैयार हूं। मेरे हृदय में राम की भक्ति उपजी है। बाबा यदि मुझे वह कथा एक बार फिर सुनाएंगे तो यह भक्ति दृढ़ होगी और बचे-खुचे सारे मोह कट जाएंगे।

बाबा ने तुलसीदास के मन की थाह ली और समझ लिया कि इस समय इसे राम का चरित्र सुनाना वैसा ही है जैसे गीली उपजाऊ मिट्टी में बीज डाल देना।

नरहरिदासजी ने तुलसीदास को राम की कथा शुरू से सुनाई। जितनी भक्ति और जितना ज्ञान बाबा ने अब तक पाया था वह सब उन्होंने इस कथा में भर दिया। राम को उन्होंने एक आदर्श पुरुषोत्तम राजा और राक्षसों का नाश करने वाले, सन्तों को सुख देनेवाले अवतार के रूप में दिखाया। सुनते-सुनते तुलसीदास की आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली। मन का

बचा-खुचा मैल भी धुल गया और उन्होंने मन ही मन अपनी बाकी ज़िन्दगी को राम की सेवा में सौंप दिया।

तुलसीदास कुछ समय सोरों में ही रहे। फिर बाद में उन्होंने सोरों त्याग कर काशी में रहना तय किया। गुरु से आज्ञा लेकर वह काशी की ओर चल दिए और वहां जाकर राम की भक्ति में लीन रहने लगे। काशी आने का तुलसीदास का एक मतलब यह भी था कि यहां पढ़ने-लिखने की सुविधा थी। वैष्णव धर्म की सभी प्रकार की किताबें यहां मिलती थीं और साथ ही राम को लेकर जितनी भी क़िताबें अब तक लिखी गई थीं वे सब यहां पढ़ने के लिए मिल सकती थीं। काशी में रहकर तुलसीदासजी ने खूब पढ़ा। भक्ति की लगातार साधना की और यहीं उनके मन में भगवान राम के दर्शनों की इच्छा भी जागी।

तुलसीदास को भगवान राम के दर्शन किस तरह हुए, इस विषय में एक कथा है। कथा इस प्रकार है : तुलसीदास काशी में रहते हुए गंगा के पार जाकर ध्यान किया करते थे। हाथ-पैर धोने के बाद उनके लोटे में जो जल बचता था, लौटते समय उसे वे एक बेरी के पेड़ की जड़ में डाल दिया करते। उस बेरी के पेड़ पर एक आत्मा रहती थी। इस जल से खुश होकर एक दिन उस आत्मा ने इनसे बात की और वर मांगने को कहा। इन्होंने कहा, "मैं भगवान राम के दर्शन करना चाहता हूं। इस विषय में कुछ सहायता कर सको तो करो।"

"मैं राम के दर्शन कर सकती तो इस अवस्था में क्यों रहती।" आत्मा ने कहा, "मैं एक बात बता सकती हूं। कर्णघंटा नामक जगह पर राम की कथा होती है। उसे सुनने के लिए एक कोढ़ी प्रतिदिन वहां आता है। वह सबसे पहले आता है और सबके बाद जाता है। वह कोढ़ी साक्षात् हनुमान हैं जो वेश धरकर कथा सुनने आते हैं। तुम उनके पैर कसकर पकड़ लो तो

वे ही तुम्हें राम के दर्शन करा सकते हैं।"

तुलसीदास ने ठीक ऐसा ही किया। वे कर्णघंटा नामक जगह पर जा पहुंचे। उन्होंने देखा, सबसे पहले एक कोढ़ी आकर एक कोने में बैठ गया है। वे भी बैठ गए और उस कोढ़ी पर नज़र रखने लगे। कथा समाप्त हुई। आनेवाले अपने-अपने घर चले गए। तब वह कोढ़ी उठा और एक ओर को चल दिया। तुलसीदास ने उसका पीछा किया। एक सुनसान जगह पर पहुंचकर उन्होंने कोढ़ी वेशधारी हनुमान जी के पैर पकड़ लिए। हनुमान जी ने पहले तो बच निकलने की कोशिश की; पर जब तुलसीदास ने छोड़ा ही नहीं तो उन्होंने अपना रूप प्रकट किया और राम के दर्शन के विषय में उपाय सुझाया, "चित्रकूट जाओ। वही तुम्हें राम के दर्शन होंगे।"

यह सुनकर तुलसीदास चित्रकूट के लिए चल दिए।

कहते हैं कि तुलसीदास चित्रकूट की ओर चले जा रहे थे। कि मार्ग में इन्हें दो सुन्दर युवक मिले जो एक हिरन के पीछे अपने घोड़े दौड़ाते चले जा रहे थे। इनमें एक युवक का रंग सांवला और दूसरे का गोरा था। ये दोनों बहुत ही सुन्दर थे। पर इन्हें शिकारी जानकर तुलसीदास ने इन युवकों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और अपने ध्यान में खोए रास्ते पर चलते गए। कुछ ही पल बाद हनुमानजी ने प्रकट होकर पूछा, "रामचन्द्रजी के दर्शन किए या नहीं ?"

"नहीं तो।" तुलसीदास ने उत्तर दिया, "पर अभी दो घुड़सवार इधर से गए हैं।"

"अरे, वही तो राम और लक्ष्मण थे।" हनुमानजी ने बताया।

सुनकर तुलसीदास पछतावे से भर गए और गा उठे "लोचन रहै बैरी होय !" अर्थात्, आंखों ही हमारी दुश्मन हो गईं।

तुलसीदास चित्रकट पहुंच गए। कहते हैं, यहां फिर राम और

लक्ष्मण ने तुलसीदास को दर्शन दिए।

ऐसा हुआ कि तुलसीदास एक दिन चित्रकूट के रामघाट पर बैठकर पूजा के लिए चन्दन घिस रहे थे। तभी आठ-नौ वर्ष के दो बहुत ही सुन्दर बालक वहां आए और उन्होंने बड़े ही प्यार से कहा, "लाइए हम आपको चन्दन लगा दें।" और उन दोनों ने अपने हाथ से तुलसीदास को चन्दन लगाया। पर तुलसीदास राम के ध्यान में इतना विभोर थे कि वे नहीं पहचान सके कि ये दोनों बालक राम और लक्ष्मण थे। इस घटना का वर्णन इस दोहे में किया गया है :

"चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।
तुलसीदास चन्दन घिसैं, तिलक देत रघुवीर।"

अर्थात्, चित्रकूट के घाट पर साधु इकट्ठे हुए। तुलसीदास चन्दन घिस रहे थे और भगवान राम उन्हें तिलक कर रहे थे।

राम के दर्शनों के बारे में एक घटना और कही जाती है। कहते हैं, एक दिन तुलसीदास घूमते-घूमते चित्रकूट से काफी दूर गांवों में निकल गए। एक जगह रामलीला हो रही थी। लंका-विजय हुई और विभीषण को राजतिलक करके राम, लक्ष्मण और हनुमान अयोध्या की ओर लौट चले। तुलसीदासजी को यह लीला बहुत ही पसन्द आई। रास्ते में एक ब्राह्मण से उन्होंने इस लीला का ज़िक्र किया। वह ब्राह्मण भौचक्का रह गया और बोला, "महाराज, इस कार्तिक के महीने में रामलीला कहां?" सुनकर तुलसीदासजी को फिर पछतावा हुआ कि इस बार भी वे राम को साक्षात् नहीं पा सके। पर हनुमानजी ने प्रकट होकर उन्हें समझाया, "इस कलियुग में भगवान के साक्षात् दर्शन किसी को नहीं हो सकते। तुम भजन में लगे रहो।" तुलसीदास चित्रकूट से काशी वापस लौट आए और राम की भक्ति में लीन रहने लगे।

नहीं कहा जा सकता कि हनुमान और राम-लक्ष्मण के बारे में ऊपर कही गई कथाओं में कितना सार है। इन कथाओं से एक बात हमें मिलती है। वह यह कि तुलसीदास राम और लक्ष्मण के ध्यान में हर समय इतना डूबे रहते थे कि उन्हें अपने ध्यान में राम के दर्शन अलग-अलग रूपों में होते थे। इस प्रकार राम और उनका चरित्र उनकी एक-एक सांस में समा गया था।

हनुमानजी को तुलसीदासजी ने अपने रक्षक के रूप में लिया था। कितनी ही कथाएं मशहूर हैं कि किस तरह हनुमानजी ने तुलसीदासजी की रक्षा की।

कहते हैं, एक बार काशी के ब्राह्मणों ने तुलसीदासजी को मार डालने के लिए कुछ बदमाशों को भेजा। पर उन बदमाशों ने देखा कि हनुमानजी की डरावनी सूरत तुलसीदासजी की रक्षा कर रही है। वे डरकर भाग गए। काशी नगर के कोतवाल ने भी एक बार तुलसीदासजी को कष्ट पहुंचाने की कोशिश की थी। कहते हैं, तब भी हनुमानजी ने ही अपने भक्त का बचाव किया। यह भी कथा है कि एक बार दिल्ली के सम्राट् ने तुलसीदास को बुलाकर जेल में डाल दिया था। जब तुलसीदासजी ने हनुमानजी का ध्यान किया तो उन्होंने वानरों की एक बड़ी भारी भीड़ किले पर भेज दी। इन वानरों ने ऐसा फसाद मचाया कि बादशाह घबरा उठा। उसने तुलसीदासजी को छोड़ दिया।

ये सब घटनाएं यही ज़ाहिर करती हैं कि तुलसीदासजी को समय-समय पर अनेकों तकलीफों का सामना करना पड़ा, पर भगवान राम ने किसी न किसी तरह अपने भक्त की रक्षा की। तुलसीदासजी ने हनुमानजी का खास-खास अवसरों पर बहुत गुणगान किया है। अपने 'रामचरितमानस' को आरम्भ करते हुए उन्होंने लिखा है, "करउं कथा हरि-पद धरि सीसा।" यहां हरि शब्द का अर्थ 'बानर' अर्थात् हनुमान ही है। हनुमानजी का

स्मरण करके ही उन्होंने भगवान राम की कथा शुरू की है। हनुमानजी के गुणगान में एक पुस्तक भी उन्होंने रची थी जिसका नाम है, "हनुमानबाहुक'। कहते हैं, इस पुस्तक को रचते ही उनकी बांहों में हो रहा तेज़ दर्द गायब हो गया था।

तुलसीदासजी का अधिक समय काशी में ही बीता। काशी में उनके कई स्थानों पर रहने का ज़िक्र मिलता है। असी घाट पर तुलसीदासजी खास तौर से रहते थे। मुकुन्दरामजी के बाग के पच्छिम-दक्खिन कोने में एक कोठरी है। कहते हैं, यहां भी तुलसीदासजी काफी रहे। यहां से पहले वे हनुमान फाटक पर रहते थे। तुलसीदासजी ने अपनी ज़्यादा पुस्तकें काशी में रहकर ही पूरी कीं। प्रसिद्ध 'विनयपत्रिका' यहीं रची गई थी। 'रामचरितमानस' को वैसे उन्होंने अयोध्या में रहते हुए शुरू किया पर उसका अधिक भाग काशी में ही पूरा किया गया। तुलसीदासजी की मृत्यु भी काशी में ही हुई। काशी से तुलसीदासजी को विशेष प्रेम था।

पर काशी के पंडित तुलसीदासजी से प्रसन्न नहीं थे। उन्होंने इस राम के भक्त को नीचा दिखाने की हर संभव कोशिश की। वें इन्हें काशी से भगा देने के लिए बेचैन रहते थे। इस सम्बन्ध में कई कथाएं प्रसिद्ध हैं। काशी के पंडितों ने इन्हें मरवा डालने की कोशिश थी। कहते हैं, एक बार पंडितों ने साफ तौर विनती की कि आप काशी छोड़कर चले जाइए। तुलसीदासजी तैयार हो गए। जाने से पहले उन्होंने एक पद बनाया जिसका भाव इस प्रकार था, "हे भगवान शिव, मैं आपके इस नगर में रहकर राम का नाम ले-लेकर अपना पेट भर रहा था। मैं न किसी को कुछ देने योग्य हूं; न किसी की भलाई करना ही मेरे भाग्य में लिखा है। इतने पर भी जोराबर लोग ज़बरदस्ती मुझे यहां से भेज रहे हैं। आप फिर उलाहना न देना।"

यह पद उन्होंने विश्वनाथजी के बन्द द्वार के नीचे से अन्दर सरका दिया और काशी से चल पड़े। अगले सुबह जब पंडित लोग विश्वनाथजी के दर्शन के लिए पहुंचे तो फाटक नहीं खुला और अन्दर से भविष्यवाणी हुई, "तुमने एक भक्त को कष्ट दिया है। जब तक तुलसीदास को लौटा नहीं लाओगे, तब तक दर्शन नहीं होंगे।" पंडित लोग दौड़े गए और विनती-प्रार्थना करके तुलसी-दासजी को लिवा लाए।

इस घटना से सिद्ध होता है कि काशी के पंडितों को तुलसी-दासजी से हार माननी पड़ी। पर इन पंडितों के विरोध का कारण क्या था? असल में उस समय तक राम की कथा को जन-भाषा में लिखने का रिवाज़ नहीं था। रामायण संस्कृत में ही थी। पंडित लोग ही उसका पाठ करते थे। आम लोग संस्कृत समझ नहीं सकते थे। राम-चरित्र का रस साधारण जनता तक पहुंच नहीं पाता था। काशी में जाकर बसने के समय से ही तुलसी-दासजी अवधी और ब्रज की जनभाषाओं में पद और छन्द बना-कर राम की प्रार्थना किया करते थे। इन पदों और छन्दों में राम का जीवन होता था। यह सभी लोगों की समझ में आसानी से आ जाता था। तुलसीदासजी द्वारा रचे गए पदों और राम कथा-वाले छन्दों को सुन-सुनकर लोग उनकी ओर खिंचते थे। दिन-दिन तुलसीदासजी का नाम बढ़ता ही जाता था। भाषा में लिखने वाले कवि की बढ़ती हुई नामवरी को देखकर काशी के पंडितों को जलन होनी थी, यही कारण था कि वे तुलसीदासजी को काशी से निकाल देने पर तुले हुए थे।

इसके अलावा एक बहुत बड़ा कारण यह था कि तुलसीदासजी छोटे-बड़े, नीच और ऊंच का भेद-भाव नहीं बरतते थे। वे सभी को राम की भक्ति के रस से पवित्र करने और हर एक की सहायता करने के लिए तैयार रहते थे। इसको लेकर भी कितनी

ही कथाएं मशहूर हैं।

कहते हैं, एक बार एक हत्यारा मुख से 'राम-राम' के शब्द उच्चारता हुआ उनके पास पहुंचा और उसने उनसे दया की भीख मांगी। तुलसीदासजी ने कहा, "जब तुम अपने किए पर पछता-कर श्रीराम का नाम ले रहे हो तो तुम शुद्ध हो गए।" वे उसे अपनी कुटी में ले गए। उसके साथ बैठकर पूजा की। प्रसाद और भोजन से उसे खुश किया। पंडितों ने इस बात को लेकर बहुत बवेला मचाया पर तुलसीदासजी ने कहा, "आप लोग राम-नाम की महिमा को नहीं जानते और बेकार शास्त्रों की दुहाई देते हैं।"

एक बार अवध का निवासी एक भंगी जब काशी आया तो तुलसीदासजी ने उसे राम के अवध का निवासी मानकर छाती से लगा लिया था।

एक कथा और प्रसिद्ध है कि एक बार जाड़े के मौसम में तुलसीदासजी गंगा के जल में खड़े ध्यान कर रहे थे। उन्हें कीमती कपड़ों से ढकी हुई एक वेश्या ने देखा। वह अचरज से खड़ी की खड़ी रह गई। वह मन ही मन तुलसीदासजी पर हंस रही थी। तभी तुलसीदास जी जल से बाहर निकले और जल के कुछ छींटे उस वेश्या पर जा पड़े। इन छींटों का ऐसा प्रभाव हुआ कि उस स्त्री ने अपना सब ठाठ-बाट त्याग दिया और वह राम की भक्त बन गई।

काशी में रहते समय की एक घटना और प्रसिद्ध है। एक दिन गोसाईंजी गंगास्नान के लिए जा रहे थे कि एक ब्राह्मणी ने, जो सब सिंगारों से सजी हुई थीं, हाथ जोड़कर आपको प्रणाम किया। तुलसीदासजी ने उसे सुहागवती होने का आशीर्वाद दिया। उस ब्राह्मणी के साथवालों से तुलसीदासजी को पता लगा

तुलसीदास की लोकप्रियता से पंडित और ब्राह्मण जलने लगे—
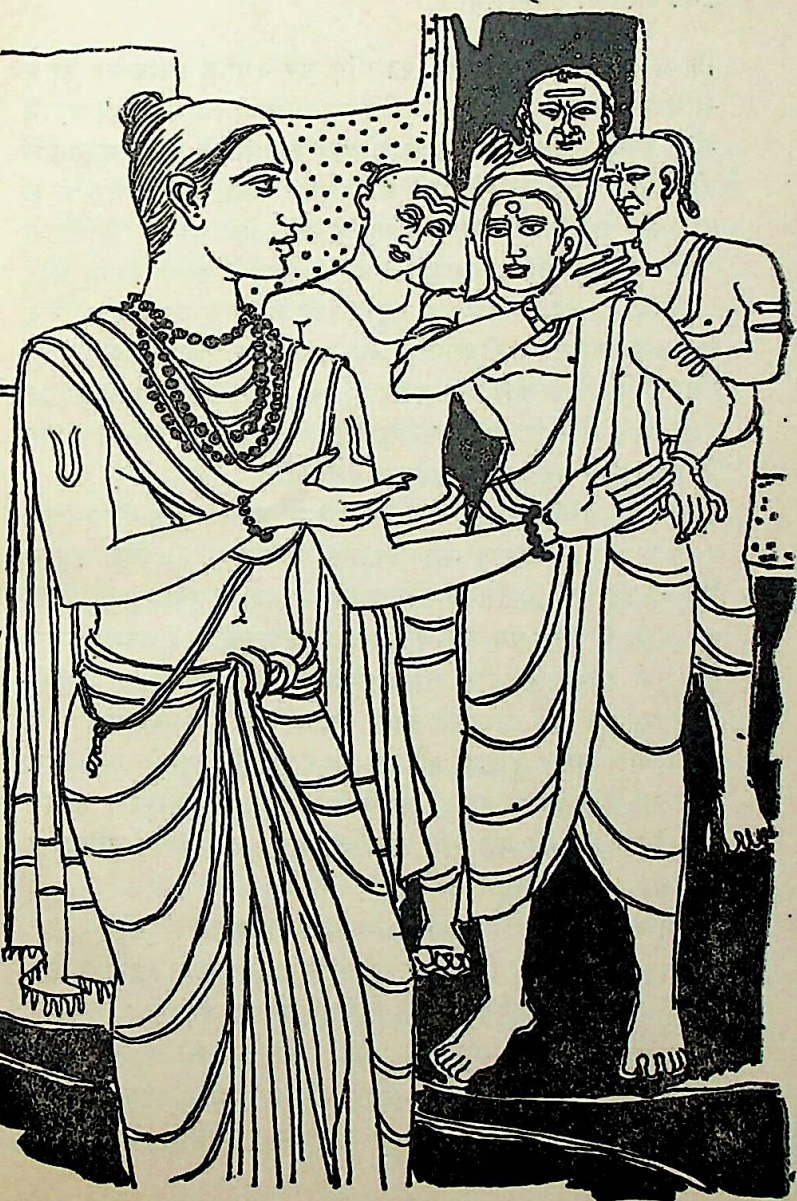
कि आज ही इस ब्राह्मणी का पति मर गया है। अब यह उसके साथ सती होने जा रही है। उन्होंने यह भी कहा कि महाराज आपने तो इसे सुहागवती होने का आशीर्वाद दे डाला है। वह झूठा कैसे हो सकता है। तुलसीदास जी सुनकर बोले, "तुम इस स्त्री के पति की दाहक्रिया तब तक मत करना जब तक मैं नहाकर न लौटूं।" कहते हैं कि तुलसीदासजी ने गंगा में प्रवेश किया और पानी में खड़े होकर तब तक हनुमानजी की प्रार्थना करते रहे जब तक उस ब्राह्मण के जीवन-दान का आश्वासन उन्हें प्राप्त नहीं हो गया। गंगा के जल से निकलकर वे उस स्थान पर आए जहां शव रखा था। जैसे ही उन्होंने कपड़ा हटाकर उस शव पर गंगाजल के छींटे दिए वह ब्राह्मण उठकर बैठ गया।

गोस्वामीजी गरीब लोगों की वैसे भी हर तरह से मदद करते रहते थे। एक ब्राह्मण को उन्होंने गंगा-पार की कुछ ज़मीन दिलवा दी थी। कितने ही लोग उनके उपदेश से बुरा रास्ता छोड़कर राम के भक्त बन गए थे। इसके तो अनेकों उदाहरण मिलते हैं। एक बार कुछ चोर चोरी करने के लिए इनकी कुटिया की ओर आ रहे थे। उन्होंने देखा कि दो सुन्दर नौजवान हाथ में धनुष-बाण लेकर कुटिया की रक्षा कर रहे हैं। चोरों का आगे बढ़ने का साहस नहीं हुआ। अगले दिन सुबह उन चोरों ने आकर तुलसीदासजी को यह सब बताया, सुनकर उनकी आंखों से आंसुओं की धारा बहने लगी।

तुलसीदासजी का अधिकतर समय काशी में ही बीता। पर इसका यह अर्थ नहीं कि काशी छोड़कर वे कहीं जाते ही नहीं थे। यहां से चित्रकूट जाने का ज़िक्र पहले किया जा चुका है। चित्रकूट शायद वे कई बार गए। इसी प्रकार अयोध्या भी वे गए और वहां कुछ दिन रहे भी। उनके सीता की जन्मभूमि मिथिला जाने का भी ज़िक्र मिलता है। साथ ही मार्ग में पड़नेवाले कितने ही

गांवों में भी वे टिके। कितने ही गांवों में उनकी यादगार आज भी मिलती है।

एक बार यात्रा करते हुए शाहाबाद ज़िले में ब्रह्मपुर गांव के पास कान्त गांव के संवरू और उसके पुत्र मंगरू ने गोस्वामीजी का बड़ा ही सत्कार किया था। इस मंगरू के वंश के लोग आज भी गोस्वामीजी को याद करते हैं और साधु-संतों की सेवा में लगे रहते हैं। एक गांव में एक रघुनाथसिंह नाम के क्षत्रिय ने आपकी बड़ी सेवा की। तुलसीदासजी ने उस गांव का नाम बदलकर रघुनाथपुर रख दिया, जो आज भी चला आ रहा है। जिस चबूतरे पर गोसाईंजी ठहरे थे वह आज भी सही-सलामत है।

कहते हैं, एक वार चित्रकूट की यात्रा करते समय चुनार के राजा ने आपको बड़े ही आदर के साथ अपने यहां ठहराया। तभी क्या हुआ कि मुगल बादशाह की आज्ञा से चुनार के उस राजा को गिरफ्तार करके दिल्ली बुलवा लिया गया। गोस्वामीजी ने अपने प्रभाव से उस राजा को बरी कराया। बादशाह ने अपमान के बदले राजा को बहुत सम्मान देकर विदा किया। राजा गोस्वामीजी के प्रति इतनी श्रद्धा रखने लगा कि तुलसीदासजी ने धर्म का तत्त्व उसे समझाने के लिए कितने ही छन्दों की रचना की। इस प्रकार की अनेकों छोटी-बड़ी घटनाएं प्रसिद्ध हैं जिनसे तुलसीदासजी के साधु-स्वभाव का परिचय हमें मिलता है।

तुलसीदासजी राम के भक्त थे, पर कृष्णजी को राम से कुछ अलग नहीं मानते थे। वे अयोध्या गए थे तो ब्रज भी गए थे। ब्रज जाने का एक मतलब नाभा स्वामी से भेंट करना भी था। ये नाभा स्वामी बड़े ही ऊंचे भक्त थे। इन्होंने 'भक्तमाल' नामक सुन्दर पुस्तक की रचना की है। इन नाभाजी ने तुलसीदासजी को महर्षि वाल्मीकि का अवतार बताया है। नाभाजी से भेंट के समय में गोस्वामीजी ने उन्हें 'रामचरितमानस' दिखाया था।

ब्रज की यात्रा के सम्बन्ध में एक बड़ी ही रोचक कथा सुनने को मिलती है। कहते हैं, जब तुलसीदासजी अन्य साधु-सन्तों के साथ गोपाल मन्दिर में दर्शनों के लिए गए तो सन्तों ने कहा, "आज तो आपको कृष्ण के सामने ही सिर झुकाना पड़ेगा। श्रीराम की मूर्ति तो यहां है नहीं।"

"मैं श्रीराम और कृष्ण में कोई अन्तर नहीं देखता।" तुलसीदासजी ने कहा और अपना सिर झुका दिया।

कहते हैं, कि बाकी सभी उपस्थित लोगों को दीख पड़ा कि गोपाल की मूर्ति बदलकर राम की मूर्ति बन गई है और मुरली के स्थान पर उनके हाथ में धनुष-बाण आ गए हैं।

गोसाईंजी की इसी यात्रा के दौरान वृन्दावन के रामघाट पर राम की मूर्ति स्थापित की गई थी। ब्रज में गोस्वामीजी ने ब्रज की चौरासी कोस की पूरी यात्रा और परिक्रमा की थी और सभी मन्दिरों के दर्शन किए थे।

'रामचरितमानस' की रचना

अवध में रहते समय तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' की रचना शुरू की। इस बारे में भी एक कथा मशहूर है।

कहते हैं, पहले गोस्वामीजी ने संस्कृत में ही राम की कथा लिखना आरम्भ किया था। एक शुभ दिन कुछ श्लोक उन्होंने बनाए। पर किसी प्रकार वे श्लोक खो गए। तब रात को उन्हें एक सपना आया। सपने में एक ब्राह्मण ने उनसे कहा कि रामायण की रचना संस्कृत में न करके जन भाषा में करो। इस पर तुलसीदास ने अगले दिन से अवधी में रामायण लिखनी आरम्भ की।

तुलसीदासजी अपने समय के बड़े ही प्रभावशाली भक्त और कवि हुए हैं। उस काल के कितने ही प्रमुख राजाओं, रईसों और सन्तों से आपका खास सम्बन्ध था। जिन कुछ मशहूर व्यक्तियों से आपका खास सम्बन्ध रहा उनके नाम हैं : राजा टोडरमल, राजा मानसिंह, अब्दुर्रहीम खानखाना, मीराबाई और उस समय के काशीनरेश।

टोडरमल सम्राट अकबर के नवरत्नों में से एक थे। ये बड़े ही धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे और तुलसीदासजी में इन्हें विशेष श्रद्धा थी। टोडरमल के कुल के लोग आज भी तुलसीदासजी की मृत्यु-तिथि पर उनके नाम से सीधा निकालते हैं और दान आदि करते हैं।

महाराजा मानसिंह भी अकबर के नवरत्नों में से एक थे और बादशाह की दाहिनी भुजा थे। इन्होंने भी तुलसीदासजी के मुख से 'रामचरितमानस' का पाठ सुना था। मानसिंह और उनके चचा जगतसिंह अक्सर गोस्वामीजी के दर्शनों के लिए पहुंचा करते थे।

अब्दुर्रहीम खानखाना बालक अकबर के संरक्षक बैरमखां के पुत्र थे। ये अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान थे। स्वभाव से ये बड़े ही दानी और भगवान के, विशेषकर कृष्ण के भक्त थे। कहते हैं कि आखिरी दिनों में इन्होंने संन्यास ले लिया था और कृष्ण की भक्ति में डूबे रहने लगे थे। तुलसीदासजी का रहीम से विशेष प्रेम था। मशहूर है कि एक बार गोस्वामीजी ने एक गरीब ब्राह्मण को रहीम के पास भेजा। ब्राह्मण को अपनी कन्या के विवाह के लिए धन की ज़रूरत थी। गोस्वामीजी ने एक दोहे की पहली पंक्ति एक कागज़ पर लिखकर ब्राह्मण को दे दी जो इस प्रकार है :

"सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सह वेदन सब कोय।"

अर्थात्, देवता की स्त्री हो या मनुष्य की या नाग की, पीड़ा सभी को सहनी पड़ती है।

रहीम ने इस पंक्ति को पढ़ा। ब्राह्मण को काफी धन दिया और नीचे लिखी पंक्ति बनाकर दोहे को पूरा कर दिया।

"गर्व लिये हुलसी फिरे, तुलसी सो सुत होय।"

अर्थात्, उस स्त्री की पीड़ा धन्य है, जो तुलसी के समान पुत्र को जन्म दे।

प्रसिद्ध है कि मीराबाई ने तुलसीदासजी को एक पत्र लिखकर उनसे पूछा था कि मेरे घरवाले मुझे भक्ति नहीं करने देते। वे मुझे तरह-तरह की तकलीफें देते हैं। आप मेरे माता-पिता के के समान हैं। बतलाइए, मुझे क्या करना ठीक है।

गोस्वामी ने उत्तर में मीराबाई को एक पद लिख भेजा था जो उनकी पुस्तक 'विनयपत्रिका' में शामिल है। पद की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :

"जिनके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही॥
तात, मात, भ्राता, सुत, पति हित इन समान कोउ नाहीं।
रघुपति विमुख जानि लघु तृन इव तजत न सुकृत डराहीं॥"

अर्थात्, जिन्हें राम-सीता से प्रेम नहीं है वे कितने ही प्रिय क्यों न हों, उन्हें परम शत्रु मानकर त्याग देना चाहिए। माता, पिता, भाई, पुत्र और पति इनके समान भलाई चाहने वाला और दूसरा कोई नहीं होता। पर यदि ये भगवान के विरोधी हों तो इन्हें भी तिनके की तरह त्याग देना चाहिए। ऐसा करने पर कोई पाप नहीं लगता।

उस काल काशी के राजा भी गोस्वामीजी के परम भक्त थे। 'रामचरितमानस' सुनने को भीड़ इकट्ठी हो गई

॥ राम॥ राम॥ राम
॥ राम॥ राम॥ राम
॥ राम॥ राम॥ राम
॥ राम॥ राम॥ राम
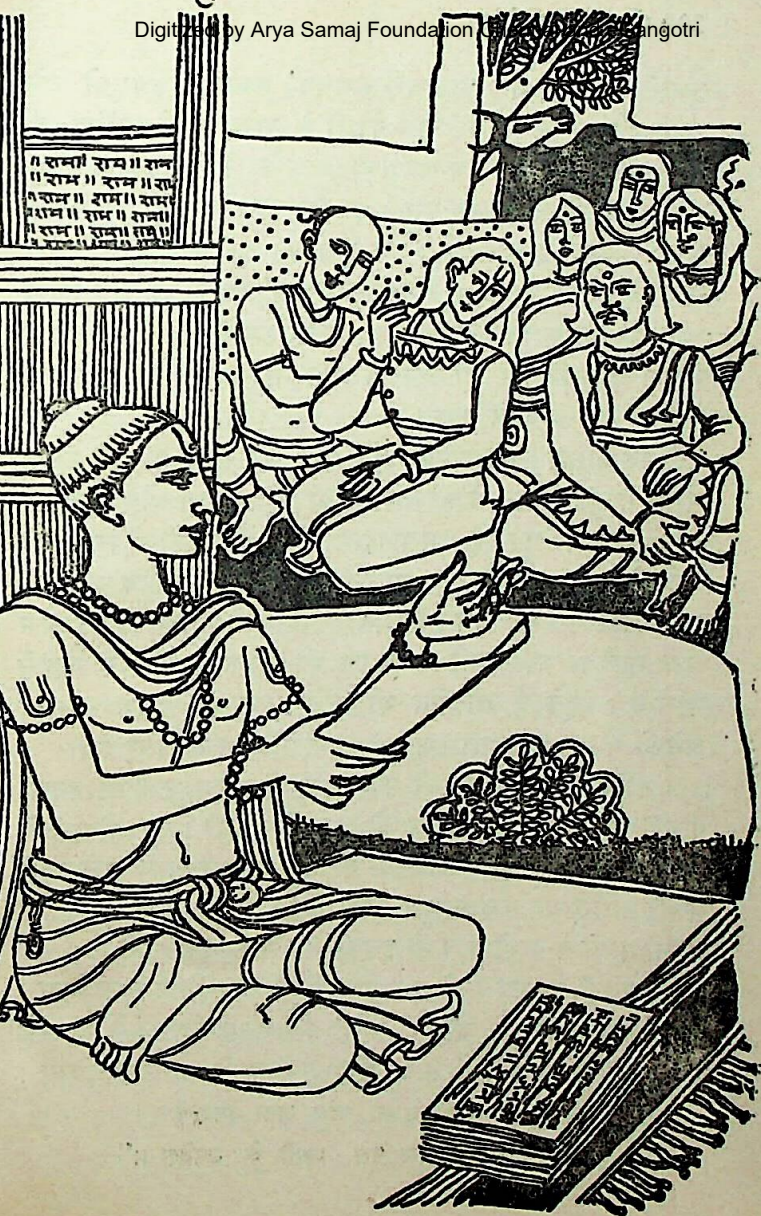
तुलसीदासजी ने जब 'रामचरितमानस' समाप्त किया तो उसे सुनने की इच्छा सबसे पहले काशी के राजा ने ही ज़ाहिर की थी। एक शुभ दिन राम-कथा का बड़ा भारी आयोजन किया गया। काशी के राजा उसमें आ विराजे। हज़ारों सुननेवाले भक्ति-भाव से इकट्ठे हुए। तब तुलसीदासजी ने खुद अपने मुख से अपने द्वारा रचे गए 'रामचरितमानस' का पहला पाठ किया था। सुनकर काशी के राजा गद्‌गद हो उठे थे। इकट्ठी जनता भी भक्ति से विभोर हो उठी थी और गोस्वामी तुलसीदास का यश दूर-दूर तक फैल गया।

इन प्रसिद्ध व्यक्तियों के अतिरिक्त उस समय के सभी प्रमुख सन्तों से तुलसीदासजी का सम्बन्ध था। नाभादास और मीरा का नाम ऊपर आ चुका है। मलूकदास से भी गोस्वामीजी मिले थे। यह भी कहा जाता है कि अष्टछाप के जाने-माने कवि नन्ददास इनके भाई थे। एक जैन मुनि बनारसीदास से भी इनका बड़ा प्रेम था। संडीला के स्वामी नन्दलाल भी इनके प्रेमी और चाहने वाले थे। कहते हैं, तानसेन भी इनसे मिले थे। इनके अलावा अनेकों भक्त और साधारण जन इनके परिचय में आए थे।

गोस्वामीजी ने लम्बी उम्र पाई थी। मशहूर है कि इनकी पत्नी रत्नावली को भी लम्बी उम्र मिली थी। तुलसीदासजी बनारस, चित्रकूट और अयोध्या के बीच अक्सर आते-आते रहते थे। इसलिए यह सच मालूम होता है कि अपने लम्बे जीवन में अपनी पत्नी से कभी न कभी इनकी भेंट ज़रूर हुई होगी।

कहते हैं, रत्नावली ने एक दोहा लिखकर पति के पास भेजा। इस दोहे में उसने यह जानना चाहा कि उनके दिन कैसे कट रहे हैं? तुलसीदासजी ने नीचे लिखे दोहे में पत्नी को उत्तर दिया :

"कटे एक रघुनाथ सों, बांध जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेम रस, पत्नी के उपदेश ॥"

अर्थात्, सिर पर बाल रखकर, जटा-जूट बांधकर, भगवान राम के सहारे हम अपना समय काट रहे हैं। पत्नी के उपदेश से हमने भक्ति का रस चख लिया है।

मशहूर है कि दूसरी बार रत्नावली ने स्वयं जाकर गोस्वामीजी के दर्शन किए थे और उनसे प्रार्थना की थी कि मुझे भी साथ रहने की अनुमति दे दी जाए। उस समय गोस्वामीजी अयोध्या में रहते थे और 'रामचरितमानस' की रचना में जुटे थे। उस समय तक उनका यश चारों ओर फैल चुका था और पति की नामवरी से गद्गद होकर ही रत्नावली अयोध्या पहुंची थी। पर तुलसीदासजी सब तरह का मोह त्याग चुके थे। उन्होंने रत्नावली को पिता के घर में रहने की आज्ञा दी।

अन्तिम बार तुलसीदासजी ही अनजाने में रत्नावली के पिता के घर पहुंच गए थे। कहते हैं, चित्रकूट से लौटते समय एक बार वे अपनी ससुराल के गांव में जा निकले। उस समय आप बूढ़े हो चुके थे और अपनी पत्नी को न पहचान सके। गोस्वामीजी ने अपना खाना-पकाना स्वयं किया। रत्नावली ने उनके चरण धोने चाहे। पर गोस्वामीजी ने इसकी आज्ञा नहीं दी। इससे रत्नावली को बड़ा दुख हुआ। अचानक उसे ध्यान आया कि पति को मिर्च-खटाई का बड़ा शौक था। उसने पूछा, "मिर्च चाहिए।" तुलसीदासजी ने उत्तर दिया, "मेरी झोली में है।" रत्नावली बेचारी चुप होकर बैठ गई। अगले दिन सुबह उसने पति के पैरों में गिरकर अपना परिचय दिया और विनती की, "मुझे भी साथ ले चलिए।" पर गोस्वामीजी राज़ी नहीं हुए। इस पर रत्नावली ने चिढ़कर कहा, "मिर्च-खटाई से लेकर कपूर तक तो झोली में लिए फिरते हो, फिर मुझे ही क्यों छोड़ रखा है!" यह सुनते ही गोस्वामीजी ने अपनी झोली वहीं पटक दी और वहां से चल दिए। यह तुलसीदासजी की रत्नावली से आखिरी भेंट थी।

तुलसीदास की पुस्तकें

तुलसीदासजी ने विवाह किया था, पर उनके कोई सन्तान नहीं हुई थी। कुछ लोगों की मान्यता है कि एक 'तारक' नाम का पुत्र उनके यहां हुआ था जिसकी कुछ ही दिन वाद मौत हो गई थी। पर यदि उन्होंने अपनी पत्नी को न त्यागा होता और उनके बहुत सारे पुत्र भी पैदा हुए होते, तब भी क्या उनको इतना यश मिला होता जितना उन्हें मिला ? माना जाता है कि जिसके यहां पुत्र नहीं होता उसका वंश नहीं चलता। पर तुलसीदासजी का वंश, उनका नाम तो ऐसा चला है कि करोड़ों लोग उनकी पूजा करते हैं। आप जानते हैं, यह यश उन्हें किनके कारण से मिला ? उन्होंने पत्नी को छोड़ दिया था। पर फिर भी उन्होंने कितने ही पुत्र-पुत्रियों को जन्म दिया। उन्हीं पुत्र-पुत्रियों के कारण तो आज भी उनका यश संसार-भर में फैला हुआ है। ये पुत्र-पुत्रियां हैं उनकी पुस्तकें, जिन्हें उन्होंने अपनी लम्बी उम्र के बीच रचा।

गोस्वामीजी ने कितनी पुस्तकें रचीं, इस विषय में भी अलग-अलग लोगों के अलग-अलग मत हैं। कोई कहता है, उन्होंने सोलह पुस्तकें रचीं, कोई बत्तीस, कोई सत्रह और कोई बारह बताता है। बहुत खोजबीन के बाद उनकी रची पुस्तकों की गिनती बारह मानी जा सकती है : इनमें छह बड़ी पुस्तकें हैं : (1) रामचरितमानस, (2) कवितावली, (3) गीतावली, (4) दोहावली, (5) विनय पत्रिका तथा (6) रामाज्ञाप्रश्न। छोटी पुस्तकें हैं : (7) रामललानहछू (8) वैराग्य संदीपनी, (9) जानकी मंगल, (10) पार्वती मंगल, (11) कृष्ण गीतावली और (12) बरवै रामायण। इनके अलावा 'हनुमान बाहुक' एक और विशेष पुस्तक है, जो गोस्वामीजी की रची हुई मानी जाती है। और भी कितने ही नाम हैं पर उनके बारे में शक है।

गोस्वामीजी के यश को कायम रखने और बढ़ाने वाली इन पुस्तकों का थोड़े में परिचय दिए बिना तुलसीदासजी का चरित्र पूरा नहीं हो सकता। इनके विषय में जानना ज़रूरी भी है क्योंकि ये पुस्तकें मनुष्य के मन, हृदय और आत्मा को ऊंचा उठानेवाली साबित हुई हैं।

'रामचरितमानस'

राम का चरित्र भारतीय सभ्यता और संस्कृति की सबसे कीमती थाती है। सबसे पहले महर्षि वाल्मीकि ने मर्यादा-पुरुषोत्तम राम का चरित्र संस्कृत भाषा में लिखा था। इस रामायण का सारे भारतवर्ष में प्रचार हुआ था। जब भारत की सभ्यता भारत से बाहर स्याम, कम्बोदिया, मलाया, जावा, सुमात्रा आदि देशों में पहुंची तो राम का चरित्र वहां भी पहुंचा। जावा, सुमात्रा के लोग आज इस्लाम धर्म को मानते हैं। पर राम की कथा से उन्हें भी बड़ा प्रेम है। वे उसे खूब पढ़ते हैं। उस पर नाटक और नृत्य नाटक बनाकर बड़ी तैयारी और सजधज के साथ उन्हें खेलते हैं।

जिस समय गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' को लिखने का विचार तय किया, उस समय देश की हालत बहुत बुरी थी। लोगों में ऊंच-नीच के भेदभाव बेहद बढ़ गए थे। अलग-अलग देवताओं को मानने वाले लोग आपस में लड़ा करते थे। लोगों में डर बैठ गया था और आत्म-विश्वास खत्म हो गया था। ऐसी हालत में गोस्वामी तुलसीदास ने राम के ऊंचे चरित्र को भारतवासियों के सामने रखने का निश्चय किया। राम के चरित्र में वे सब गुण समा गए हैं, जिन्हें वे जनता में भरना चाहते थे।

अब तक राम की कथा संस्कृत में ही लिखी जाती थी। पर

तुलसीदास ने निश्चय किया कि मैं राम की कथा आम भाषा में लिखूंगा। इसका उस काल के पंडितों ने बहुत विरोध किया था। पर गोस्वामीजी साधारण जनता में राम की कथा को फैलाना चाहते थे। उन्होंने किसी भी प्रकार के विरोध की परवाह न की और 'रामचरितमानस' को अवधी भाषा में लिखा।

ऊपर बताया जा चुका है कि 'रामचरितमानस' का लेखन अयोध्या में आरम्भ किया गया था। अरण्यकाण्ड तक का भाग अयोध्या में ही लिखा गया। बाद का पूरा भाग काशी में लिखा गया। रामनौमी, मंगलवार, सन् 1574 के शुभ दिन उन्होंने इस किताब को पूरा किया। इसे लिखने में कई साल लगे थे।

'रामचरितमानस' एक बड़ी पुस्तक है। यह सात काण्डों में बंटी है। ये काण्ड इस प्रकार हैं : (1) बालकाण्ड, (2) अयोध्याकाण्ड, (3) अरण्यकाण्ड, (4) किष्किन्धाकाण्ड, (5) सुन्दरकाण्ड, (6) लंकाकाण्ड और (7) उत्तरकाण्ड।

'रामचरितमानस' की उपमा मानसरोवर से दी गई है। जिस प्रकार मानसरोवर में शुद्ध और पवित्र जल भरा है। इस 'रामचरितमानस' में भी राम के चरित्र का पवित्र जल भरा है। ऊपर लिखे गए सात काण्ड मानो सात घाट हैं, जिन पर नहाकर भक्त पूरे मानसरोवर का आनन्द ले सकता है।

'रामचरितमानस' में खासकर चौपाई और दोहा छन्दों का प्रयोग किया गया है। ये दोनों छन्द गाने में बहुत ही मधुर हैं। जब रामायण की कथा करनेवाले पण्डित मीठे स्वर में इन चौपाइयों को गाते हैं तो एक समां बंध जाता है। इन दो छन्दों के अलावा इसमें और भी कितने ही छन्दों का प्रयोग किया गया है, जैसे, सोरठा, हरिगीतिका, सवैया आदि।

इस ग्रन्थ में रामचन्द्रजी को एक आदर्श मानव और भगवान् दोनों को मिले-जुले रूप में दिखाया गया है। तुलसीदासजी राम

को विष्णु का अवतार मानते थे। वे उनके भक्त थे और उनकी पूजा करते थे। पर भगवान् होते हुए भी तुलसी के राम एक आदर्श मनुष्य हैं। अर्थात्, वे एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श क्षत्रिय और आदर्श राजा हैं। समाज में रहनेवाले सामाजिकों के जितने भी स्वरूप हो सकते हैं, उन सबका आदर्श हमें राम के चरित्र में मिलता है। इसी आदर्श की स्थापना के कारण वे मनुष्यों के समान बरतते हुए भी भगवान् है।

रामचन्द्रजी को तुलसी ने सबसे पहले एक सुन्दर बालक के रूप में दिखाया है। बालक राम की बाल-लीलाओं का बड़ा ही रोचक वर्णन 'रामचरितमानस' में हुआ है। इसके बाद उनका शिष्य रूप हमारे सामने आता है। जब गुरु विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को अपने साथ वन में लिवा ले जाते हैं तो वे एक सच्चे शिष्य के रूप में गुरु की हर आज्ञा का पालन करते हैं और यज्ञ को नष्ट करनेवाले राक्षसों को मार डालते हैं। आगे चलकर भी राम गुरु वसिष्ठ की हर आज्ञा पालन करते हैं।

जनकपुरी में राम का शान्त, गम्भीर और वीर रूप हमें देखने को मिलता है। वे बड़े ही धीरज और सूझ-बूझ के साथ शिव के धनुष को तोड़ते हैं। जब परशुराम आकर धनुष-भंग करनेवाले व्यक्ति को चुनौती देते हैं और कहते हैं कि :

"सुनहु राम जिन सिव धनु तोरा।
सहस्रबाहु सम सो रिपु मोरा।।"

अर्थात्, हे राम, जिसने शिव का धनुष तोड़ा है वह सहस्रबाहु के समान ही मेरा दुश्मन है। तब रामचन्द्रजी लक्ष्मण की तरह तनिक भी गुस्सा ज़ाहिर नहीं करते। वे ऋषि परशुराम के लिए आदर और सम्मान का भाव ही रखते हैं। ताकतवर होते हुए भी वे अपमान का उत्तर अपमान से नहीं देते। नतीजा यह होता है कि परशुराम को झुकना पड़ता है और राम की महिमा को

कबूल करना पड़ता है।

पुत्र के रूप में राम का चरित्र बहुत ही ऊंचा बन पड़ा है। जब कैकेयी दशरथ से दो वर मांगकर राम को वनवास के लिए जाने की आज्ञा देती है, तब भी राम तनिक गुस्सा नहीं होते। वे कैकेयी से कहते हैं :

"सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी।
जो पितु मातु वचन अनुरागी।।"

अर्थात्, हे माता, वही पुत्र भाग्यवान है जो माता-पिता के वचनों का आदर करता है। रामचन्द्रजी के मन से वनवास दिलानेवाली माता कैकयी के लिए तनिक भी बुरा भाव पैदा नहीं होता। वे बरावर उन्हें कौशल्या के समान आदर के योग्य ही मानते रहते हैं। भरत को राज्य मिलेगा यह सुनकर भी उन्हें दुख नहीं होता। वे कह उठते हैं :

"भरत प्राणप्रिय पावहिं राजू।
विधि सब विधि मोंहि सम्मुख आजू।"

अर्थात्, भरत मुझे प्राणों से भी प्यारे हैं। उन्हें राज्य मिलेगा, इसमें सब तरह से भगवान् की कृपा ही है। कैकेयी और दशरथ पर लक्ष्मण को गुस्सा करते देखकर राम ने उसे समझाया है कि हमें केवल माता-पिता की आज्ञा का पालन करने का ही अधिकार है, उनकी आज्ञा में शक करने का नहीं।

राम अपने तीनों भाइयों से अत्यन्त प्रेम करते थे। विशेषकर लक्ष्मण से उन्हें बहुत स्नेह था। लक्ष्मण और भरत दोनों ने ही अपने प्रेम का अच्छा परिचय दिया है। लक्ष्मण राम के प्रेम के वश होकर अपनी पत्नी को और महलों के सुख को छोड़कर वन गए थे। भरत ने हाथ में आया राज्य छोड़ दिया था। चौदह सालों तक वे साधु के वेश में रहे। जब राम के वनवास की खबर भरत ने सुनी तो :

"भरतहिं बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौन।"

अर्थात्, राम का वन में जाना सुनते ही भरत पिता के मरने की बात भी भूल गए।

जब लक्ष्मण को शक्ति बाण लगा और वे अचेत हो गए, तब राम के विलाप में राम के भाई के लिए प्रेम के दर्शन कवि ने हमें कराए हैं। राम कह उठते हैं, यदि लक्ष्मण जीवित न हुए तो मैं यहीं प्राण दे दूंगा और सीता को रावण से छुड़ाने की भी कोशिश नहीं करूंगा।

राम की वीरता का सबूत इससे बड़ा और क्या हो सकता है कि मात्र दो भाइयों ने मिलकर उस देश के सबसे बड़े राजा रावण को हरा दिया।

राम एक सच्चे मित्र भी थे। उन्होंने सुग्रीव-विभीषण के साथ अपनी मित्रता को पूरा निभाया। वे चाहते तो लंका और किष्किन्धा का राज्य अपने पास रख सकते थे। पर ऐसा उन्होंने नहीं किया। लंका की गद्दी पर उन्होंने विभीषण को बैठाया और किष्किन्धा का राज्य सुग्रीव को सौंप दिया।

गोस्वामी तुलसीदास ने राम को राजा राम के रूप में दरसाया है। राम एक आदर्श राजा है। वे मानते हैं :

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।"

अर्थात्, जिस राजा की प्रजा दुख पाती है, वह राजा अवश्य ही नरक का भागी है। इसी मत के अधीन उन्होंने राजा बनने के बाद अपने सभी सुखों को त्याग कर प्रजा की सेवा की। यहां तक कि अपनी प्यारी पत्नी सीता तक का त्याग किया और उनके पुत्रों का राजमहल के बदले, तपोवन में जन्म हुआ।

राम दीन-दुखियों और नीच समझे जानेवाले लोगों से दिल में प्रेम करते थे। शबरी के जूठे बेरों को खाना और जटायु

नामक गिद्ध की दाह-क्रिया अपने हाथों से करना, इस बात का सबूत है। रात एक उत्तम स्वामी भी थे। हनुमान ने स्वयं को उनका तन-मन से सेवक बनाया। राम ने भी उन्हें अपने भाई लक्ष्मण के बराबर स्थान दिया और उन्हें अपना सबसे विश्वासी सहायक माना।

इस तरह गोस्वामी तुलसीदास ने राम के चरित्र के द्वारा भारत के सामने एक ऐसा महान् आदर्श रखा जो जीवन के हर पहलू में हमारा रास्ता दिखाता है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने एक स्थान पर लिखा :

"राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।"

अर्थात्, श्री रामचन्द्र का चरित्र इतना महान् है कि उनके जीवन की हर घटना कविता है । राम के इस चरित्र को भारत की दुखी जनता के सामने जनता की भाषा में रखकर गोस्वामी-जी ने भारत का बड़ा भारी हित किया। इससे लोगों के हृदय में एक नई आशा और एक नई उमंग पैदा हुई, जिसने उन्हें डूबने से बचा लिया।

श्रीराम के अलावा 'रामचरितमानस' के बाकी पात्र भी अपने-अपने ढंग से आदर्श चरित्र हैं। कौशल्या प्रेममयी आदर्श मां है। दशरथ एक आदर्श पिता हैं, जो पुत्र के लिए अन्याय होता देख जीवित नहीं रह पाते और अपने प्राण त्याग देते है। कैकेयी गलती करती है पर बाद में पछताती है। सीता एक आदर्श पति-व्रता पत्नी है। वह वन में जाने का हठ इसलिए करती है कि राम के बिना नहीं रह सकती। वह पति की सेवा वन में भी करती रहना चाहती है। दुबारा वनवास मिलने पर भी वह पति राम को दोष नहीं देती।

लक्ष्मण और भरत के अपने भाई के लिए प्रेम का ज़िक्र तो

ऊपर किया जा चुका है। सुग्रीव, अंगद और विभीषण मित्रता का आदर्श बताते हैं और हर हालत में श्रीराम की सहायता करते हैं। यहां तक कि रावण को भी एक आदर्श शत्रु के रूप में दिखाया गया है। गोस्वामीजी ने कहा है कि यदि रावण न होता तो राम की महानता कैसे सामने आती!

'रामचरितमानस' भारतीय संस्कृति का रूप दिखाने वाला एक महान् काव्य है। इसमें सीधी-सरल भाषा में भारतीय जीवन की तस्वीर खींची गई है। इसलिए राम का यह चरित-काव्य एक धार्मिक पुस्तक बन गया है। काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और गुजरात से बंगाल तक राजा से लेकर रंक तक सब इस पुस्तक का आदर के साथ पाठ करते हैं। इसकी महानता का इससे बड़ा सबूत और क्या हो सकता है कि भारत की लगभग सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है। इसकी लाखों प्रतियां प्रतिवर्ष छपती हैं। 'रामचरितमानस' की विशेषताओं का वर्णन करने के लिए सैकड़ों पुस्तकें लिखी गई हैं।

'रामचरितमानस' केवल राम की कथा के कारण ही मशहूर नहीं है। अपनी भाषा की सुन्दरता और अपने छन्दों और अलंकारों की शोभा के कारण भी यह बहुत सराहा गया है। दोहा और चौपाई को बहुत ही सरलता से मधुर धुन में गाया जा सकता है। गांव वाले मिलकर खूब रामायण गाते हैं। इसके साथ ही इसमें अनगिनत ऐसे वचन हैं, जो कहावतें बन गए हैं। लोग हर परिस्थिति के लिए उपयोगी चोपाइयां याद रखते हैं और उन्हें कहावतों की तरह बोलते हैं। उदाहरण के रूप में :

"पराधीन सपनेहु सुख नाहीं"

अर्थात्, गुलाम को सपने में भी सुख नहीं मिलता।

"रघुकुल रीति सदा चलि आई
प्रान जायं बरु वचन न जाई"

अर्थात्, रघुकुल की यह प्रथा है कि प्राण भले ही चले जाएं; दिया हुआ वचन व्यर्थ नहीं होता ।

'कवितावली'

गोस्वामीजी ने श्रीराम की कथा को बार-बार अनेकों रूपों में लिखा है। 'कवितावली' में कवित्त छन्द में राम की कथा कही गई है। इस पुस्तक की रचना सन् 1622 से सन् 1742 ईसवी के बीच किसी भी समय हुई।

गोस्वामीजी ने 'कवितावली' अथवा 'कवित्त रामायण' को ब्रजभाषा में लिखा है। यह भी 'रामचरितमानस' की तरह सात काण्डों में बंटी हुई है। छन्द बड़े ही मधुर और मन पर असर डालने वाले हैं। राम की बाल-लीला और लंका के जलने का वर्णन बड़ा ही उत्तम हुआ है।

'दोहावली'

इस ग्रन्थ में लगभग 573 दोहे हैं। कुछ दोहे दूसरे ग्रन्थों से लिए गए हैं। कुछ नये हैं। इन दोहों में कवि ने श्रीराम की महिमा, भक्ति की महिमा और नीति आदि विषयों पर बड़े ही काम की बातें कही हैं। इन दोहों से देश और समाज की उस काल की हालत का भी काफी अन्दाज़ लगाया जा सकता है।

'विनयपत्रिका'

यह गोस्वामीजी का अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी रचना पदों में की गई है। इसके विषय में एक मज़ेदार कहानी कही जाती है। ज़िक्र आता है कि कभी गोस्वामीजी ने एक हत्यारे ब्राह्मण को भगवान् का भोग खिलाकर पवित्र किया था और उसे भगवान् का भक्त बना लिया था। कहते हैं, इस पर कलियुग बहुत गुस्सा हो गया। वह तुलसीदासजी को धमकियां देने लगा।

घबराकर गोस्वामीजी ने हनुमानजी से विनय की। हनुमानजी ने कहा कि तुम श्रीरामचन्द्रजी की सेवा में एक अर्ज़ी अर्थात् विनय की पत्रिका पेश करो। इस पर भगवान् कलि को डपट देंगे और कलि आगे तुम्हें तंग नहीं करेगा। यह 'विनयपत्रिका' वह अर्ज़ी है, जो गोस्वामी तुलसीदासजी ने राजा राम की सेवा में पेश की है।

समय-समय पर श्रीराम की स्तुति में जो पद गोस्वामीजी ने बनाए वे इस पुस्तक में हैं। राम की ही नहीं, इसमें शिवजी, भैरों, काली, गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट आदि की महिमाओं का भी वर्णन है। साथ ही सीता, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की भी वंदनाएं हैं।

इन सब स्तुतियों और वन्दनाओं के बाद गोस्वामीजी ने अपनी यह पत्रिका राजा राम की कचहरी में पेश की। 277 वें पद में वे लिखते हैं :

> **"विनयपत्रिका दीन के बाप आप ही बांचो।**
> **हिये हर तुलसी लिखी सो सुभाय**
> **सही करि बहुरि पूछिये पाचों।"**

अर्थात्, गोस्वामीजी रामजी से प्रार्थना करते हैं कि हे परम पिता राम, मेरी इस अर्ज़ी को आप स्वयं ही पढ़ना; किसी और के ऊपर मत छोड़ देना। मैंने शिवजी को और आपको ध्यान में रखकर इसे सरल स्वभाव से लिखा है। इस पर आप अपने दस्तखत कर देना।

'रामाज्ञाप्रश्न'

अन्त में कवि ने एक पद में यह भी वर्णन किया है कि श्रीराम ने उनकी अर्ज़ी को स्वीकार कर लिया है और उस पर अपने दस्तखत कर दिए हैं।

यह पुस्तक सात अध्यायों में बंटी है। हर अध्याय में उन्चास दोहे हैं। इस पुस्तक में भी राम की कथा कही गई है। पर वह क्रम से नहीं है। इस पुस्तक का मतलब शकुन विचारकर भविष्य का ज्ञान करना है। इस पुस्तक के विषय में भी एक कथा प्रसिद्ध है :

कहते हैं, गोस्वामीजी के एक मित्र थे ज्योतिषी गंगाराम। काशी में राजघाट के राजा के पुत्र को एक बार बाघ पकड़ ले गया। राजा ने गंगाराम को बुलाया और कहा, "मुझे बताओ कि मेरा पुत्र घर लौटेगा या नहीं। यदि तुम्हारी बात सच निकली तो तुम्हें एक लाख का इनाम दिया जाएगा और यदि गलत निकली तो तुम्हारा सिर काट दिया जाएगा।" ज्योतिषी गंगाराम ने एक रात का समय मांगा और घर आ गया। वह बहुत चिन्तित था और उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या जवाब दिया जाए। गोस्वामीजी के पूछने पर उसने पूरी बात बताई। सुनकर गोस्वामीजी ने एक ऐसी पुस्तक लिखने का निश्चय किया जिसकी सहायता से जाना जा सके कि भविष्य क्या है। इस समय गोस्वामीजी के पास कलम-दवात नहीं थी। पान के डिब्बे में से कत्था लेकर और उसे घोलकर एक सरई के टुकड़े से गोस्वामीजी ने छह घण्टे में यह पुस्तक लिख डाली। इसके आधार पर ज्योतिषी गंगाराम ने होनहार का विचार किया। तब उसने जाकर राजा को बताया कि तुम्हारा पुत्र अमुक समय पर सकुशल लौट आएगा। राजा का पुत्र बताए समय पर लौट आया। राजा ने प्रसन्न होकर गंगाराम को एक लाख रुपया दिया। यह सब रुपया गंगाराम ने गोस्वामीजी को देना चाहा। गोस्वामीजी ने इन्कार किया तो गंगाराम ने दस हज़ार रुपये उन्हें भेंट कर ही दिए। इस पैसे से गोस्वामीजी ने हनुमानजी के दस मन्दिर बनवाए।
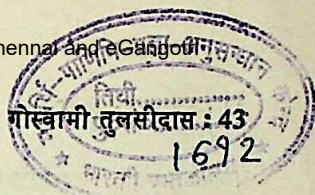
'रामललानहछू'

यह पुस्तक गांवों में गाए जाने वाले छन्द सोहर में लिखी गई है। इस पुस्तक की भाषा भी देहाती ढंग की है। यह स्त्रियों द्वारा गाए जाने के लिए लिखी गई लगती है। इसमें गांव के रीति-रिवाजों की झलक मिलती है। इसका मतलब शायद यह है कि स्त्रियां विवाह, पुत्र-जन्म आदि के अवसरों पर ऐसे गीत गाएं जो श्रीराम के प्रेम से सराबोर हों।

आज भी उत्तर प्रदेश के गांवों में पुत्र-जन्म, विवाह, मुण्डन, जनेऊ आदि के अवसर पर 'रामललानहछू' के सोहर गाए जाते हैं।

'वैराग्य-संदीपनी'

यह छोटी-सी पुस्तक है। इसमें कुल 46 दोहे, 2 सोरठे और चौदह चौपाइयां हैं। इनमें तुलसीदासजी ने साधुओं के मतलब के ज्ञान का वर्णन किया है। इस पुस्तक में बताया गया है कि संन्यासी किस प्रकार संसार से विरक्त रहे और भगवान् राम का ध्यान करता रहे।

'जानकी मंगल'

इस पुस्तक में श्रीराम तथा अन्य तीनों भाइयों के विवाहों का वर्णन है। इसमें 192 अरुणा छन्द और 24 हरिगीतिका छन्द हैं। यह गोस्वामीजी के शुरू के दिनों की रचना ही मालूम होती है।

'पार्वती मंगल'

इस ग्रन्थ में भी कुल 148 अरुण छन्द और 16 हरिगीतिका छन्द हैं। इसमें पार्वतीजी के तप और उनके शिवजी से ब्याह का

वर्णन है। यह 'जानकी मंगल' की कोटि की रचना है।

'कृष्णगीतावली'

गोस्वामी तुलसीदासजी ने श्रीकृष्ण को आधार बनाकर भी एक ग्रन्थ की रचना की, जिसे 'कृष्णगीतावली' नाम दिया गया। इसमें 61 पद हैं। इसकी भाषा ब्रजभाषा है। सूरदास की तरह ही गोस्वामीजी ने भी इसमें कृष्णजी के जन्म, उनके बचपन और उनकी लीलाओं का वर्णन किया है। जब तुलसीदासजी ब्रज गए थे उसी समय शायद उन्होंने इस पुस्तक की रचना की थी।

'बरवै रामायण'

इस पुस्तक में भी 'रामचरितमानस' की तरह ही सात काण्डों में राम की कथा कही गई है। यह कथा बहुत छोटी है और कुल 69 छन्दों में समाप्त हो गई है। यह पुस्तक बरवै छन्द में है। कहते हैं, इस बरवै छन्द की खोज अब्दुर्रहीम खानखाना ने की थी। अपने मित्र के प्रेम के कारण ही तुलसीदास ने इस छन्द में भी राम की संक्षिप्त कथा लिखी।

'हनुमान बाहुक'

इस ग्रन्थ की रचना मृत्यु से कुछ ही समय पहले हुई थी। कहते हैं, गोस्वामीजी की भुजा में दर्द रहने लगा था। जब वह दर्द सहने लायक न रहा तो गोस्वामीजी ने हनुमानजी की प्रार्थना में इस 'हनुमान बाहुक' की रचना की। इसकी रचना के साथ ही गोस्वामीजी का दर्द जाता रहा।

समाज-सुधारक तुलसीदास

पीछे बताया जा चुका है कि जिन दिनों तुलसीदास जीवित थे उन दिनों देश और समाज की क्या हालत थी। गोस्वामीजी के 'रामचरितमानस' और दूसरी पुस्तकों ने पहला काम यह किया कि लोगों के मन में छाई निराशा को दूर किया। उन्हें ढाढ़स बंधाया और मुसीबत में पैर जमाकर खड़े होने का सन्देश दिया। इस सन्देश ने लोगों को बहुत ही बल दिया। दूसरी बात यह है कि गोस्वामीजी ने समाज के हर आदमी के लिए ज़रूरी कर्त्तव्य के बारे में साफ-साफ बताया। परिवार के पिता-पुत्री, पत्नी, भाई आदि एक-दूसरे के साथ कैसा बर्ताव करें ? राजा, सेनापति, गुरु और पुरोहित आदि का आचार-विचार कैसा होना चाहिए और कैसे इन्हें प्रजा के लिए अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए ? इन सवालों को उन्होंने अपनी पुस्तकों में अच्छा खुलासा दिया। इससे जनता को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हुआ। विदेशियों के ज़ुलम के कारण लोगों के जीवन में जो बिखराव आ गया था, वह कम हुआ।

तीसरी बात, गोस्वामीजी ने गृहस्थी और संन्यासी के कर्त्तव्यों को अलग-अलग साफ करके समझाया। संन्यासी का कर्त्तव्य यह नहीं है कि वह समाज से कोई मतलब ही न रखे। संन्यासी का अर्थ यह है कि वह हर तरह से निश्चित होकर अपनी पूरी शक्ति को समाज की सेवा में लगा दे। स्वयं तुलसीदासजी ने ऐसा ही किया। पत्नी को छोड़कर वे किसी जंगल में नहीं चले गए। वे अयोध्या या काशी में समाज के बीच में रहे। केवल राम की कथा ही लिखकर उन्होंने समाज की सेवा नहीं की बल्कि दीन-दुखियों और गरीबों की सहायता की।

गोस्वामीजी ने अपने इन काव्यों से हिन्दू जाति के आपसी

मतभेदों को मिटाने की पूरी कोशिश की। पहले शिव और विष्णु के भक्त आपस में लड़ा करते थे। तुलसीदासजी ने दोनों ही देवताओं को समान माना। तुलसी के राम लंका पर चढ़ाई करने से पहले शिव की पूजा करते हैं और उसके शिव राम को अपना देवता मानते हैं। इसी तरह उन्होंने राम और कृष्ण के भक्तों के मतभेद को भी मिटाया।

महान् मानव

नम्र होते हुए भी तुलसीदासजी आत्मसम्मान की भावना से भरपूर थे। वे काशी के पंडितों के सामने नहीं झुके। उल्टे पंडितों को ही उनसे मात खानी पड़ी। वे एक सच्चे निर्लोभी साधु थे। अपने युग के कितने ही महान् राजा और रईस उसके मित्र थे। पर उन्होंने कभी किसी से कुछ नहीं चाहा। वे किसी प्रकार के भेदभाव को स्वीकार नहीं करते थे। गोस्वामी तुलसीदास एक महान् कवि के रूप में ही नहीं, महान् मानव के रूप में सदा प्रसिद्ध रहेंगे।

मृत्यु

गोस्वामीजी की मृत्यु संवत् 1680 में हुई थी। मृत्यु के कारण के विषय में कई मत हैं। कुछ लोग कहते हैं कि प्लेग से उनकी मृत्यु हुई और कुछ विद्वानों का मत है कि प्लेग से नहीं, पिरकी (फोड़ा)

नामक रोग से हुई। उनकी मृत्यु किस प्रकार भी हुई हो, यह प्रकट है कि वे अन्तिम क्षण तक अपने पूरे होश में रहे और राम का नाम उनकी जिह्वा पर रहा। मरने से ठीक पहले जो अन्तिम छन्द उन्होंने बनाया वह इस प्रकार है :

"राम नाम यश बरनि कै, भयहुं चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अब ही तुलसी सौन॥"

अर्थात् राम के नाम का यश बखान कर अब मैं चुप होना चाहता हूं, तुलसीदास के मुख में अब तुलसी और गंगाजल डालो।

इन वचनों के साथ वह महापुरुष और कवि सदा के लिए मौन हो गया।

□□

मुद्रक : शान प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032

5842
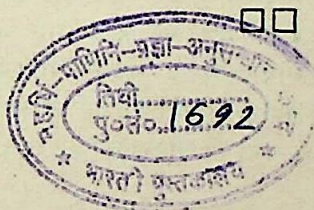
छोटे बच्चों के लिए बड़े टाइप में मनोरंजक, ज्ञानवर्धक पुस्तकें

बड़े आकार में सचित्र लोककथाएं

• जापान की लोककथाएं • अफ्रीका की लोककथाएं • पड़ोसी देशों की लोककथाएं • लोककथाएं उत्तर पूर्वांचल की • असम की लोककथाएं • बंगाल की लोककथाएं • पंजाब की लोककथाएं • उत्तर प्रदेश की लोककथाएं • हिमाचल की लोककथाएं • गुजरात की लोककथाएं • बिहार की लोककथाएं • राजस्थान की लोककथाएं • महाराष्ट्र की लोककथाएं • केरल की लोककथाएं • मध्यप्रदेश की लोककथाएं • हरियाणा की लोककथाएं • मारीशस की लोककथाएं • रूस की लोककथाएं • चेकोस्लोवाकिया की लोककथाएं • बुलगारिया की लोककथाएं • वियतनाम की लोककथाएं • तिब्बत की लोककथाएं (4.00) • बर्मा की लोककथाएं (8.00)

मूल्य 6.00

बहुरंगी बालोपयोगी कविताएं

• बंदर बांट 5.00 • नीली चिड़िया 5.00 • जन्मदिन की भेंट 5.00 • सुनो कहानी 6.00 • अन्धेर नगरी 6.00 • हुआ सबेरा उठो-उठो 5.00 • हम बालवीर 3.00 • आजादी के गीत 4.00 • निंदिया आ जा 5.00 • देश हमारा 6.00 • विजय गीत 5.00 • अगर-मगर 5.00 • फुलवारी 5.00 • चाचा नेहरू 4.00 • आओ करें सवारी 4.00 • अपना देश 6.00 • फूल खिले हैं डाली-डाली 4.00 • हमारे पक्षी 5.00 • खेलें कूदें नाचें गाएं 4.00 • मेरी गुड़िया कुछ तो बोल 4.00 • कहावतों के गीत 6.00